कला और समाज का अर्न्तसम्बन्ध

पूजा कुशवाहा
दृश्यकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत
Correspondence Author: पूजा कुशवाहा
Received 3 Jan 2026; Accepted 12 Feb 2026; Published 20 Feb 2026
DOI: https://doi.org/10.64171/JSRD.5.1.70-72

सारांश
समाज मानव समुदाय का एक संगठन है जिसमें मनुष्य जन्म से मरण तक की क्रियाएं करता है। समाज के बिना मनुष्य के जीवन का कोई महत्व नहीं है, तथा समाज ही मानव जाति की सुरक्षा और विकास का मूल आधार है। कहा जाता है कि कला समाज का दर्पण है। अतः कलाकार अपने वातावरण, परिस्थितियों व समाज के इर्द–गिर्द ही मनन–चिन्तन करता है तथा कला के माध्यम से अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कला के लिए समाज का होना ठीक वैसे ही आवश्यक है जैसे समाज के लिए कला का होना। प्राचीन काल से ही कलाएँ मानव समाज के लिए अभिव्यक्ति का कार्य कर रही हैं। जब भाषा नहीं थी तब भी जिन सांकेतिक रेखाओं के माध्यम से आदिमानवों ने अपनी अभिव्यक्ति की उसे आज हम कला के अन्तर्गत ही सम्मिलित करते हैं। कला न सिर्फ एक व्यवस्था है अपितु समयानुसार समाज को प्रतिबिम्बित करने का माध्यम है। समाज में उत्थान हो या पतन, कलाएँ सदैव ही उन परिस्थितियों को प्रदर्शित करने के लिए तत्पर रही है। कला के विभिन्न माध्यमों द्वारा कलाकार ने कभी वीर रस तो कभी श्रृंगार रस, कभी करूण रस तो कभी शान्त रस के द्वारा समाज में अभिव्यक्ति की है। कला और समाज के अर्न्तसम्बन्ध के अन्तर्गत मैनें इस शोध पत्र में कला व समाज के परस्पर सम्बन्धों को बताते हुए कलाकार का समाज के प्रति दायित्वों का भी उल्लेख किया है । साथ ही साथ वर्तमान समय में कला के विभिन्न स्वरूपों का समाज के प्रति योगदान के बारे में भी विस्तृत वर्णन करने का किया है ।

मूलशब्द: कला, समाज, अभिव्यक्ति, तकनीकी, प्रयोग, सृजनात्मक, विषय–वस्तु, मूर्त, अमूर्त

परिचय

जन्म लेने के पश्चात् मनुष्य जब अपने चक्षु पटल खोलता है तब वह एक समाज से घिरा होता है जिसमें प्रथम वह मनुष्य तथा दूसरा सम्पूर्ण संसार सम्मिलित होता हे। अर्थात् मनुष्य को जिस वातावरण से सम्बद्ध होकर जीना है वह है समाज जो कि अनेक समूहों का संगठन होता है। इसी समाज में मनुष्य जीवन जीना सीखता है तथा परस्पर सामंजस्य स्थापित करके समाज में रहना सीखता है। जीवन रूपी चक्र में व्यक्ति को ना चाहते हुए भी उलझना ही है क्योंकि कोई भी जीवन समाज से विरक्त नहीं हो सकता चाहे वह जीव–जन्तु ही क्यों न हो उनका भी अपना समाज होता है।

प्रागैतिहासिक कालीन प्रमाण से भी यह सिद्ध होता है कि जंगली मानव बुद्धिहीन अवस्था में भी समूहों में रहता था। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आदि मानव समूह में शिकार करना भी प्रारम्भ किया। गुफाओं व कन्दराओं के धरातल पर अनगढ़ रेखाओं के द्वारा अभिव्यक्ति करना प्रारम्भ किया जिसमें विभिन्न क्रियाकलापों, नृत्य व आखेट सम्मिलित है। इन चित्रों के द्वारा मनुष्य के सामाजिकता का प्रारम्भ दिखलायी पड़ता है। उनके द्वारा अंकित क्रिया–कलापों की रेखाकृतियां, सामूहिक उल्लास व आखेट का दृश्य उन प्राचीन सभ्यताओं को प्रदर्शित करता है। जैसे–जैसे समाज का उदय तथा समयानुसार प्रगति होने लगी वैसे–वैसे कलाओं की भी उन्नति देखने को मिलने लगी। कन्दराओं तथा शैल धरातल से मिट्टी के दीवारों व भूमि पर भी कलाएँ फलने–फूलने लगीं। सामाजिक सभ्यताओं के साथ–साथ कलाएँ भी विकसित होने लगी। कला और समाज के योगात्मक स्वरूप को समझने से पहले आवश्यक है दोनों के पृथक रूपों को समझना। यदि कला की बात करें तो कला की कोई सटीक परिभाषा नहीं है। कला को एक परिभाषा में बांध देने से कला के साथ अन्याय हो सकता है, क्योंकि कला का न कोई आदि है न ही अन्त। कला अनन्त व असीमित है। जीवन का आदर्श रूप प्राप्त करने के लिए कला एक सबल साधन है। मानव समाज को व्यवस्थित रूप देने के लिए तथा अभिव्यक्ति के लिए कला अनिवार्य है। वहीं समाज की बात करें तो हम पाते हैं कि समाज के बिना मनुष्य के जीवन का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति जो कुछ बनना चाहता है वह समाज के वातावरण में ही बन सकता है। दरअसल, समाज एक प्राकृतिक संस्था है जिस पर व्यक्ति का अस्तित्व और विकास निर्भर करता है तथा मानव जाति की सुरक्षा और विकास का मूल आधार है। समाज एक वृहद् संगठन है जिसमें प्रत्येक समुदाय संघ और सम्प्रदाय आते हैं। भिन्न–भिन्न सामाजिक क्रियाकलापों द्वारा सम्बन्ध जन्म लेते हैं और यही समाज का निर्माण करते हैं। इसी समाज में सभ्यताएँ पलती हैं तथा इन सभ्यताओं में संस्कृति भी सम्मिलित होती है जिन व्यवहारों को हम समाज में सीखते हैं वही हमारी संस्कृति होती है।

कला, कलाकार और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध

कला व कलाकार समाज में ही जन्म लेता है। कलाकार का मन–मस्तिष्क व व्यक्तित्व समाज से सदैव प्रभावित होता है। कलाकार अपने वातावरण, समय, समाज, संस्कृति एवं परिस्थितियों के इर्द–गिर्द ही मनन–चिंतन करता है। अपने परिवेश में घटित घटनाएँ, रीति–रिवाज, धर्म, पर्व, को एक कलाकार जीता है। इनसे प्रभावित होकर तथा अपने व्यक्तिगत विचारों के साथ मंथन करके वह अपनी अभिव्यक्ति करता है। जब भी कलाकार किसी कलाकृति का निर्माण प्रारम्भ करता है तब वह अपने मन–मस्तिष्क, भावनाएँ, चेतना व परिस्थितियों का समावेश करके कला के द्वारा अभिव्यक्ति करता है। कलाकार यदि प्रसन्नावस्था में चित्र का निर्माण करता है तो वह अवस्था उसके चित्र में अवश्य परिलक्षित होती है उसी प्रकार दुःख की अवस्था भी उसके रंगों व रेखाओं में दिखाई देने लगती है। कलाकार जब चित्रण कार्य करता है तो उस दौरान उस क्रिया को वह जीता है प्रत्येक रंगों का चुनाव तथा आकृतियाँ उसके द्वारा की जाती है जिसका वह आनन्द उठाता है। कला–कार्य एक ऐसी प्रक्रिया

है जो कलाकार के मन को शान्त करता है तथा कलाकार उसमें लीन हो जाता है उस दौरान वह अन्य सभी चीजों को भूलकर सिर्फ कलाकार्य का आनन्द लेता है। कलाकार अपने व्यक्तिगत अनुभवों को अपने चित्रों में अभिव्यक्त करता है। कलाकार जब अपने चित्रों को अपने व्यक्तिगत विचारों से सराबोर कर समाज के सामने प्रदर्शित करता है तब कुछ लोगों को कलाकृतियाँ काफी पसंद आती है तो कुछ लोगों को नापसंद।

इसका कारण यह भी हो सकता है कि शायद कुछ लोग उस कलाकृति को अपने आप से जोड़ पाते हैं या कुछ लोगों को कृति में निहित रंग व आकार प्रभावित करते हैं या कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं जो कलाकृति निर्माण के समय कलाकार की मनःस्थिति तक पहुंच पाते हों। कलाकृति का आनन्द दर्शक किस प्रकार ले सकता है यह पूर्ण रूप से स्वयं दर्शक पर निर्भर करता है। कलाकार दर्शकों के अनुसार प्रभाव उत्पन्न कर पाता है तो दर्शक भी उससे जुड़ पाते हैं अन्यथा दर्शक कलाकृति को नापसंद भी कर देते हैं। भले ही कलाकार ने उस कलाकृति में बहुत मेहनत की हो। इसलिए कलाकार कला आलोचकों का भी खुले दिल से स्वागत करता है। कलाकार जब कलाकृति का निर्माण करता है तो उसका मुख्य दो उद्देश्य हो सकता है प्रथम स्वान्तः सुखाय अर्थात् स्वयं को आनन्द की अनुभूति प्रदान करने के लिए तथा दूसरा अपनी कृतियों को बेचकर के आमदनी प्राप्ति हेतु। दोनों ही परिस्थितियाँ एक कलाकार के समक्ष होती हैं। यदि वह केवल स्वान्तः सुखाय हेतु कार्य करे तो आधुनिक समय में वह भूखा मर जायेगा वहीं दूसरी तरफ वह सिर्फ एक विक्रेता बनकर बाजार के अनुसार कृतियों का उत्पादन करे तो उसके स्वयं की अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता तथा आनन्द कहीं न कहीं क्षीण होने लगेगा। आधुनिक समय में यह एक जटिल समस्या बनती जा रही है। कलाकार अपने चित्रों में स्वयं की अभिव्यक्ति करता है तो कलाकार समाज का एक अंश है और जिस समाज के द्वारा उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है जिसमें वह बोलना, चलना, जीवन–जीना तथा सृजन करना सीखता है वह उसी को कृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। समाज के द्वारा सिखाये गये साहित्य, कथानक तथा संस्कारों को भी कलाकार अभिव्यक्त करता है। समाज ने कलाकार को सृजन हेतु जो स्रोत उसके सामने रखा है वह उसी को अभिव्यक्त करता है, परन्तु अभिव्यक्त करने का तरीका और विधा कलाकार द्वारा चुनी गयी होती है जिसमें उसको सुख मिलता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कलाकार किसी भी स्तर पर कृतियों का निर्माण कर ले परन्तु उसकी जड़ समाज में ही सन्निहित है। कलाकृतियाँ व्यक्तिगत तरीके से चित्रित की जाती है परन्तु इसको सिर्फ व्यक्तिगत वस्तु की तरह नहीं रखा जा सकता है। इन कृतियों को समाज के बीच रखना आवश्यक है।

कलाकार के ऊपर पड़ने वाले सामाजिक प्रभाव की बात करें तो हम पाते हैं कि कलाकार वही गढ़ता है जो वह घटित होते देखता है। अपने समय के प्रभाव से मुक्त होकर वह कभी सृजन नहीं कर सकता है। कलाकृति के निर्माण हेतु कला व समाज के अतिरिक्त समय भी उतना ही महत्व रखता है। कलाकार अपने समाज के समकालीन परिवेश से प्रेरित होकर ही सृजन करता है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सार्वभौमिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक व सामाजिक सभी मुद्दों से प्रभावित होकर कलाकार कलाकृति निर्मित करता है जो कि समयानुसार होता है। हाल ही में घटित कोविड–19 की आपदा से हम सभी परिचित है। जिस समय हम सभी चारदीवारी के अन्दर कैद कर स्वयं को सुरक्षा प्रदान कर रहे थे। उस समयहम सभी के अपने आपको लोगों से दूर कर रहे थे। जिस समय बीमारी एक भयंकर रूप ले रही थी उस समय भी कलाकार ने सृजन करना नहीं छोड़ा। अपने रंगों, रेखाओं शब्दों व कुशलता के द्वारा कलाओं की उत्पत्ति होती रही। कलाकार ने कभी रास्ते में फँसे मजदूरों और प्रवासियों का दुःख–दर्द व पीड़ा को अभिव्यक्त किया तो कहीं देश में कार्यरत सामाजिक सेवा देने वाले व्यक्तियों जैसे पुलिस कर्मी, डॉक्टर, सफाई कर्मी व अन्य की वीरता का सराहनीय चित्रण अंकित किया। इसके साथ–साथ अकेलेपन को जीकर उसका सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही प्रकार के पहलू का चित्रण किया और परिवार के सदस्यों के साथ बिताए गए सुख–दुःख के पलों को भी बखूबी अंकित किया। समय चाहे जैसा भी हो कलाकार ने अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति को नहीं त्यागा। सोशल मीडिया के सहयोग से कलाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से करने का प्रयत्न किया। ऑनलाइन प्रदर्शनियों का आयोजन, चित्रण तकनीकी व माध्यम के वीडियो को साझा कर कलाकारों ने उस बुरे समय को भी सृजनात्मक बनाने की भरपूर कोशिश की। उस समय की गतविधियों को अपने कलाओं द्वारा अभिव्यक्ति किया। कहीं न कहीं कलाकार समुदाय समाज को धैर्य, आशा तथा मजबूत रहने के लिए प्रेरित भी किया। हम सभी किसी भी परिस्थिति में अपने आपको खड़ा रख सकें इसके लिए प्रयास भी किया। कलाकार जो भी कर पा रहा था वह सब समाज की ही देन है। समाज में मच रहे हलचल को कलाकार अपने भावना तथा विचारों के सामंजस्य से प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा था तथा अपने अनुभवों को साझा कर रहा था।

''कला समाज का दर्पण है'' यह कथन सार्वभौमिक है। समाज में हो रहे क्रिया–कलापों को ही कलाकार अपनी कला में दिखाता है जिसमें अपना जीवन–यापन कर रहा है उसको वह भलीभाँति समझता तथा अनुभव करता है। प्रकृति ने जो कुछ मानव को दिया है वह उसी का भोग करता है और प्रकृति प्रदत्त प्रत्येक वस्तुओं का अनुकरण करता है। प्रकृति में उपस्थित सभी तत्वों को आस्वादन कर व उससे प्रभावित होकर उसकी सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति करता है। जो कलाकार को दिखायी देता है वह उसी की अभिव्यक्ति अपने तकनीकी व माध्यम द्वारा करता है। कलाकार की प्रत्येक कृति में समाज परिलक्षित होता है भले ही वह शीर्षक सहित हो या शीर्षक हीन, मूर्त हो या अमूर्त, व्यक्तिगत हो या अन्य व्यक्ति से सम्बन्धित हो। प्रत्येक कृति समाज का ही एक रूप है तथा किसी न किसी कारणों से वह समाज से जुड़ा हुआ है। जब कलाकार प्रत्यक्ष रूप से रोजमर्रा की सामाजिक घटनाओं को अपने चित्राकृति में अंकित करता है तो वह सीधे तौर पर समाज का अंश प्रदर्शित करता है। वह उस चित्राकृति को भाव, रंग–योजना, लावण्य से परिपूर्ण करता है तथा दर्शकों को भ्रमित न करते हुए उनके सम्मुख प्रस्तुत करता है। परन्तु जब कलाकार अपनी चित्राकृतियों को अमूर्तरूप में चित्रित करता है तो वह कल्पना व सौंदर्य को रंग–रेखा, भाव, लावण्यता के साथ संयोजित करके प्रस्तुत करता है जिसमें सौन्दर्य व आनन्द की अनुभूति अप्रत्यक्ष रूपाकारों से कराता है। चित्राकृति प्रत्येक प्रकार से समाज से जुड़ी हुई है चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। चित्राकृति निर्मित करने वाला कलाकार जो स्वयं समाज का अंग है तो समाज का अभिन्न अंग होकर किसी कृति की रचना की जा रही है तो वह कृति किस प्रकार समाज से पृथक हो सकती है। सामाजिक गतिविधियों, क्रियाकलापों, सौन्दर्य, विभिन्न भावनाओं व कल्पनाओं से प्रेरित होकर कलाकार कलाकृति गढ़ता है तथा यह प्रेरणा समाज ही उसे प्रदान करता है। कलाकार का सृजन उसके स्थान, समय व समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होता है। जैसे–जैसे समाज का चिन्तन व विचार बदलता है कला भी उससे प्रभावित होना शुरू हो जाती है।

माध्यम, तकनीकी, रंग तथा विषय में परिवर्तन होने से भी कला का स्वरूप समयानुसार अपने आप बदलने लगता है। प्रागैहासिक काल में प्राकृतिक धरातल व माध्यम उपलब्ध थे जैसे शैल, दरी, गुफाएँ, प्राकृतिक, चर्बी आदि तब आदिमानव इनके द्वारा ही अपनी अभिव्यक्ति करता था। तत्पश्चात जब मानव समाज उन्नति करने लगा तथा नदियों किनारे सभ्यताएँ पनपने लगी तब भी कलाएँ निखरना प्रारम्भ हुई गुफाओं तथा पत्थरों के स्थान पर मिट्टी के दीवारों, भूमि पर खनिज व प्राकृतिक रंगों द्वारा चित्रांकन होने लगा उसके साथ कालनुसार विषय–वस्तु भी बदलने लगे। धीरे–धीरे मनुष्य प्रकृति को देवतातुल्य समझने लगा व उन्हें ही पूजने लगा। चित्रों में प्रकृति को चित्रांकित करना भी प्रारम्भ कर दिया जिससे प्रकृति इन्हें प्राकृतिक आपदाओं से बचायेगी। धीरे–धीरे समय पुनः तब्दील हुआ, पुनः रंग, रूप, माध्यम व आकार परिवर्तित हुए। कपड़ों, कागज, कैनवास, भित्ति

व अन्य आधुनिक धरातलों पर कलाएँ उतरने लगी जिसमें माध्यम, रंग व विषय–वस्तु का नया स्वरूप देखने को मिला। आधुनिक समय में न्यू मीडिया कला भी प्रचलित होने लगी है जिसमें कलाकृति का निर्माण डिजिटल माध्यम व तकनीक से किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समय का चक्र सदैव ही परिवर्तन लाता है तथा यह समाज भी परिवर्तन चाहता है तथा उसे स्वीकार भी करता है जिससे नीरसता खत्म होती है। आदि से आधुनिक काल तक कलाओं ने भी अपने विभिन्न स्वरूप परिवर्तित किए तथा सम्भावना यही है कि भविष्य में माध्यम व तकनीकी के अनुसार पुनः स्वरूप में परिवर्तन आयेगा जो समय और समाज के ही कारण सम्भव हो पायेगा। कलाकार के समक्ष जैसा परिवेश होगा वह उसी में सृजन करेगा।

आधुनिक समय का कलाकार प्रयोगों में विश्वास करने वाला है। वह किसी भी एक माध्य या विधा में बँधकर सृजन नहीं करना चहाता है बल्कि नवीन तकनीकी, माध्यम व विचार को अपनी कलाकृति में स्थान दे रहा है। आज के युग कला प्रयोगवादी होती चली आ रही है जिसका समाज तथा समय से सीधा–साधा सम्बन्ध है। काकार अपनी विशिष्ट प्रतिभा तथा अनुभव से नवीन परिणाम की तलाश में लगा रहता है। मौलिक होने के लिए कलाकार प्रयोगधर्मी हो गया है। निरन्तर प्रयत्नशील रहना या अनवरत किसी कार्य में नित–नवीन विचारों व तकनीकों के साथ संलग्न रहना ''प्रयोग'' बन जाता है। प्रयोग का परिणाम सम्भवतः नवीन या परिवर्तनशील होता है यही नवीनता प्रयोगकर्त्ता के आनन्द व सन्तुष्टि का कारण बन जाता है और यही कारण पुनः नये प्रयोग को करने के लिए प्रेरक होता है। ये प्रयोग ही किसी परम्परा या शैली की शुरूआत भी करते हैं। इन्हीं परम्परा या शैली में पुनः नवीन प्रयोग एक नये मार्ग को प्रशस्त करती है तथा फिर एक नई परम्परा जन्म लेती है। मानव जाति के विकास के साथ–साथ ही प्रयोग तथा परम्परा का भी उद्भव हुआ जो अनवरत एक साथ चलते रहे कभी परम्परा ने प्रयोग का साथ दिया तो कभी विरोध किया।

किसी भी कार्य को कुशलता पूर्वक करना ही कला है चाहे वो रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा हो या ललित कलाओं की विभिन्न विधायें हो जिस प्रकार इस धरा पर मनुष्यों का विकास हुआ, इसी प्रकार समयानुसार उनके बुद्धि, विवेक, कौशल एवं सृजन क्षमता का भी विकास हुआ जैसे–जैसे समाज में ज्ञान का दायरा बढ़ने लगा वैसे–वैसे आवश्यकताओं में वृद्धि लाजमी है जिसके फलस्वरूप नये अविष्कार होने लगे और इन अविष्कारों के पीछे न जाने कितने ही प्रयोग हुए। यदा–कदा परिणाम से सन्तुष्ट न होने पर उसमें पुनः प्रयोग किया गया। समय के चक्र के साथ–साथ प्रयोग के स्वरूप, माध्यम, तकनीकी का चक्र भी घूमता रहा है।

समय के साथ निरन्तर चलते रहने से ही समाज व कला गुफाओं और भित्तियों के सतह से समूह व सभ्यताओं तक पहुंचा। जैसे–जैसे मनुष्य का रहन–सहन, पहनावा व संस्कृतियों में प्रयोग के साथ विकास होता चला आया ठीक वैसे ही कला भी धरातल, माध्यम व तकनीकों के सामंजस्य से अपना स्वरूप बदलने लगी। प्राचीन समय में खनिज रंगों, गेरू, काजल, खड़िया, मिट्टी व जानवरों की चर्बी से पत्थरों व कन्दराओं पर अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। समाज जब पत्थरों से निकलकर नगरों व सभ्यताओं में बसने लगा तब कला भी सभ्यताओं के साथ फलने–फूलने लगी। कभी मिट्टी के धरातल पर वानस्पतिक रंगों से सजने लगी तो कभी पत्तों और कपड़ों पर अलंकृत होने लगी। माध्यम व तकनीक ने कला को भी बदला। कला परम्पराओं व संस्कृति में जीती रही तथा लोगों के बीच में रहकर लोक कला कहलाने लगी। लोगों के लिए लोगों द्वारा बनाई जाने लगी। कभी त्योहारों के बहाने रंगोली, ऐपण, सांझी, अल्पना के रूप में तो कभी भित्तियों पर चित्रित होने लगी। कलात्मकता का क्षेत्र बहुआयामी है। कला विचार और सृजन से लेकर कला रूपों की विभिन्न विधाओं के उपयोग तक विस्तार है। पीढ़ी दर पीढ़ी कला स्थानान्तरित होती गई और समय व माँग के अनुसार रंग, रूप, आकार, विचार तथा पहचान परिवर्तित होता चला आया। परिवर्तन प्रयोगों का ही परिणाम होता है। किसी भी परम्परा में एक निश्चित समय के पश्चात् रूपान्तरण देखने को मिलता है। कहते हैं कि ठहरा हुआ पानी भी एक समय के बाद गन्दगी का कारण बनने लगता है। इसलिए पानी का बहना आवश्यक है। उसी प्रकार किसी भी समय, संस्कृति, पद्धति व परम्परा में भी परिवर्तन लाजमी है। इन्हीं परिवर्तनों से प्रभावित होकर कलाकार भी समाज में समयानुसार अपने चित्रों को नवीन स्वरूप देने में लगा रहता है।

निष्कर्ष

कला और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज में ही कला पलती–बढ़ती है। समाज से ही कला है। एक कलाकार अपने कृतियों के माध्यम से समाज में चेतना डालने का प्रयत्न करता है। कलाकार अपने सामाजिक तथा प्राकृतिक ज्ञान के द्वारा सशक्त कलाकृतियों का सृजन करता है। कलाकार का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह स्वयं के सुख के साथ–साथ समाज के उत्थान में प्रेरणा देने वाली कृतियों का निर्माण करे और समाज भी कलाकार स्थिति व कृतियों का रसास्वादन करे। चूंकि समाज में जीने वाली कला समाज के लिए ही समाज के एक अंश द्वारा रचा जाता है। कला समाज से ही प्रेरित होकर समाज के समक्ष प्रस्तुत होता है। अतः कला समाज का साथी है ऐसा कहा जा सकता है। कला समाज का दर्पण है। जिसमें कलाकार अपनी चेतना के द्वारा कृतियों का निर्माण करता है जो उस समाज के समय का प्रतिबिम्ब होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महावर, डॉ0 कृष्णा, 2019, नवीन कला प्रवृत्तियाँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. अशोक, 2007, कला, सौन्दर्य और समीक्षाशास्त्र, संजय पब्लिकेशन्स।
3. अशोक, 2012, कला निबन्ध, संजय पब्लिकेशन्स।
4. वर्मा, डॉ0 अविनाश, वर्मा, अमित, 2007,कला एवं तकनीक, प्रकाश बुक डिपो।
5. श्रोत्रिय, डॉ0 शुकदेव, 1989, कला बोध एवं सौन्दर्य, छवि प्रकाशन।
6. मैकेन्जी, जे0एस0, 2009, समाज दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन।
7. तिवारी, हंस कुमार, 1999, कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन।
8. मावड़ी, डॉ0 मोहन, 2007, चित्रकला के मूल आधार, तक्षशिला प्रकाशन।
9. श्रीवास्तव, ए0आर0एन0, सामाजिक मानव विज्ञान प्रकाशनमाला।
10. शुक्ल, रामचन्द्र, 1974, कला और आधुनिक प्रवृत्तियां, श्री घनश्याम भार्गव, जी0डब्लू0लॉरी एण्ड कम्पनी।
11. श्रोत्रिय, शुकदेव, 2001, कला विचार, चित्रायन प्रकाशन।